आसान नहीं था सावरकर के लिए 1857 की लड़ाई को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम साबित करना

1907 की बात है, ब्रिटेन से छ्पने वाले सभी अखबारों में 'विक्ट्री' डे के सरकारी विज्ञापन छापे, सभी में 1857 के विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजी सेना को धन्यवाद दिया गया था। पूरे पचास साल जो हो गए थे उस घटना को। 6 मई को लंदन के अखबार 'डेली टेलीग्राफ' ने बड़ी हैडिंग लगाई, '50 साल पहले इसी हफ्ते शौर्य से हमारा साम्राज्य बचा था'। इतना ही नहीं इस मौके पर लंदन के एक थिएटर में एक प्ले भी रखा गया, जिसमें रानी लक्ष्मीबाई और नाना साहेब पेशवा जैसे क्रांति के प्रमुख चेहरों को हत्यारा और उपद्रवी की तरह प्रस्तुत किया गया। सावरकर 1 साल पहले ही लंदन पढ़ने पहुंचे थे, श्यामजी कृष्ण वर्मा की फेलोशिप पर, उन्हें वर्मा ने इंडिया हाउस में रहने की जगह दी थी।

विनायक दामोदर सावरकर, वो लंदन खाली पढ़ने नहीं गए थे और ना ही श्याम जी कृष्ण वर्मा केवल पढ़ने या अपने घर इंडिया हाउस में रहने की जगह इन युवाओं को खाली पढ़ने के लिए नहीं देते थे। वो तो दुनियां भर में भारतीय क्रांतिकारियों के सबसे बड़े मेंटर, अभिभावक के रूप में उभरे थे, सारी सम्पत्ति इंडिया हाउस खरीदने और क्रांतिकारियों की पढ़ाई और हथियारों का ख़र्च देने के लिए दान कर दी थी उन्होंने। तय किया गया कि ब्रिटिश सरकार के इस झूठे दावे का उन्हीं की नाक के नीचे लंदन में विरोध किया जाएगा। इस विरोध की कमान वीर सावरकर के हाथों में दे दी गई।

10 मई का दिन तय किया गया, वो दिन जब क्रांति की पहली चिंगारी 1857 में उठी थी, वो दिन जिस दिन पूरे भारत में क्रांति का दिन तय किया गया था। लंदन में पढ़ रहे सभी भारतीय युवाओं ने 1857 की क्रांति की 50वीं वर्षगांठ के बड़े बड़े बिल्ले अपनी अपनी छाती पर लगाए, सामूहिक उपवास रखा, कई सारी सभाएं भी पूरे दिन रखी गईं और प्रतिज्ञाएं ली गईं कि जब तक सांस चलेगी, भारत की आजादी के लिए लड़ते रहेंगे।

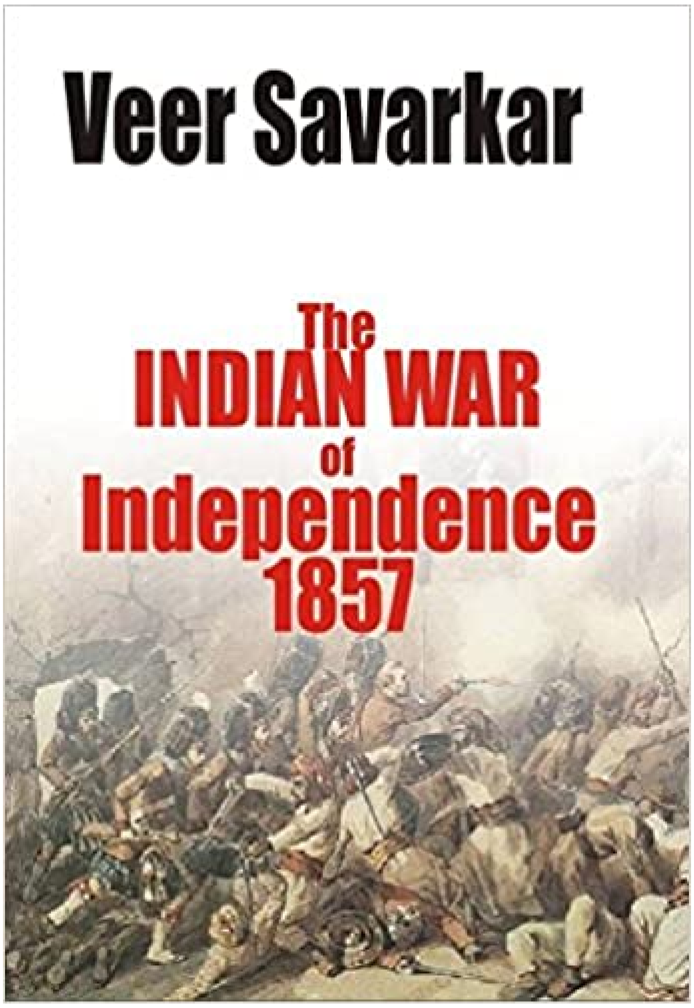

अंग्रेज उनकी इस हरकत से तिलमिला उठे, लेकिन लोकतंत्र और कानून की दुहाई देने वाला इंगलैंड जैसे भारत में तानाशाही शासन करता था, वैसा लंदन में नहीं कर पाता था, उसकी अपनी जनता ही उनका विरोध करती थी। फिर भी उन्होंने भारतीयों के इन कार्यक्रमों में तमाम अड़ंगे लगाए। कई जगह भारतीय युवाओं की पुलिस से झड़प हुई। यहां तक कि दो युवाओं को बिल्ले ना हटाने के चलते उनके कॉलेज से निकाल दिया गया, लेकिन उन्होंने बिल्ले उतारने से साफ मना कर दिया, सावरकर से प्रभावित ये दोनों युवा था हरनाम सिंह और आर एम खान।

उस साल 10 मई तो गुजर गया, लेकिन कहीं ना कहीं अपमानित महसूस कर रहे थे भारतीय युवा कि कैसे हमारे देश पर राज करके, उनकी आजादी की लड़ाई को दबाके ये लोग जश्न मना रहे हैं और तमाम भारतीय भी इस जश्न में उनके साथ हैं क्योंकि उन्होंने भी कहीं ना कहीं मान लिया था कि 1857 की लड़ाई केवल सैनिक विद्रोह था, या फिर कुछ राजाओं की अपनी गद्दी बचाने के लिए की गई अंग्रेजी राज से बगावत थी। सारे विद्रोही अपने स्वार्थ के लिए लड़ रहे थे, इस आरोप को साावरकर और बाकी साथी क्रांतिकारी कैसे हजम कर सकते थे। तय किया गया कि देश ही नहीं दुनियां के सामने 1857 का सच लाया जाएगा, वो भी ऐसे पुख्ता सुबूतों के साथ जिन्हें अंग्रेजी सरकार भी काट ना सके।

लेकिन सावरकर के सामने बड़ी मुश्किल थी, केवल सुनी सुनाई बातें थी, जो वीरता की कहानियां बुजुर्गों से सुनी थीं बस वही। जो किताबें कोर्स में पढ़ाई गई थीं, वो अंग्रेजों ने तैयार किया था। ऐसे में कैसे 1857 का सच सामने लाया जाय ? ये बड़ा सवाल था, और जो पिस्तौल से नहीं लाया जा सकता था।

सावरकर की ये समझ आ गया था कि पिस्तौल किनारे रखकर कलम उठानी पड़ेगी, तभी दुनियां खास तौर पर भारतीयों और आम अंग्रेजों को सच से रूबरू करवाया जा सकता है।

लेकिन सवाल ये भी बड़ा था कि कोई टाइम मशीन तो थी नहीं कि उसमें बैठकर 50 साल पहले जाकर देख लिया जाए कि सच क्या है, इधर जो भी राजा, या क्रांतिकारी उसके लिए लड़े थे, वो भी जिंदा नहीं बचे थे और उस वक्त का कोई भी डॉक्यूमेंट्री प्रूफ कम से कम भारत में तो अंग्रेजों ने रहने नहीं दिया था। फिर भी एक उम्मीद तो थी। भारत में ही तो डॉक्यूमेंट्स नहीं थे, अंग्रेजों के पास तो थे।

जिस तरह से आज विकीलीक्स अमेरिकी सरकार की केबल्स लीक करता रहता है, उसी तरह की केबल्स तब भी जाती थीं। यानी जो अधिकारी इंडिया में तैनात थे, वो अंग्रेजी सरकार को तार, विस्तृत रिपोर्ट आदि भेजते रहते थे। अंग्रेजी संसद भी हर मामले में तब जांच कमीशन बनाती थी, उनकी रिपोर्ट्स भी सुरक्षित रखी जाती थीं, तो क्या उनके जरिए सच लाया जा सकता है। सावरकर ने पहले ये पता किया कि ये रिपोर्ट्स कहां रखी जाती हैं और फिर ये जाना कि इन्हें कैसे पढ़ा जा सकता है। पढने के लिए कहीं ना कहीं जाना ही पड़ता, क्योंकि ना इंटरनेट था और ना ही आसानी से फोटो कॉपियर मिलते थे।

इस मिशन में उनकी मदद की इंडिया हाउस के मैनेजर मिस्टर मुखर्जी और उनकी अंग्रेजी पत्नी ने। सावरकर को पता लग चुका था कि ब्रिटेन सरकार ने एक अलग से इंडिया हाउस लाइब्रेरी बना रखी है, जहां दशकों पुराने भारत से जुड़े डॉक्यूमेंट्स और रिपोर्ट्स रखी जाती हैं ताकि आईसीएस के लिए

तैयारी कर रहे छात्र या शोध छात्र उसे पढ़कर अंग्रेजी राज और भारत के बारे में जान सकें। तब उन्होंने सोचा भी नहीं होगा कि इन पुराने डॉक्यूमेंट्स से भी कोई उनके खिलाफ इतनी बड़ी क्रांति कैसे खड़ी कर सकता है।

मुखर्जी ने उन्हें एक छात्र के तौर पर उस लाइब्रेरी का सदस्य बनवा दिया। 18 महीने तक सावरकर ने बाकी सारे क्रांति के काम एक तरह से उठाकर रख दिए, एक ही मिशन था 1857 का सच ढूंढना, उसको दुनियां के सामने लाना। वो ये मानने को तैयार नहीं थे कि जिस भारत भूमि में वो जन्मे थे, उस धरती से केवल स्वार्थी जन्मे थे, वीर नहीं। उनकी मेहनत धीरे धीरे रंग ला रही थी। दिक्कत ये थी कि ये महासमुद्र था उन डॉक्यूमेंट्स और रिपोर्ट्स का जो हर आईसीए ऑफिसर, सेना की टुकड़ियों के कप्तान और बडे अधिकारी वहां भेजते थे। उन्होंने धन्यवाद भी दिया अंग्रेजों की इस आदत का, कि वो इतिहास संभाल कर रखते थे, सोचिए आज तक लंदन के एक म्यूजियम में 1857 की क्रांति के महानायक तात्या टोपे की चोटी तक संभाल कर रखी हुई है।

उन्होंने अपने शोध को मराठी में लिखना शुरू कर दिया, अभी शोध का काम जारी ही था कि एक साल बीत गया, 10 मई 1908 की तारीख आ गई। अब तक सावरकर तैयार हो चुके थे। सावरकर ने 1857 क्रांति की वर्षगांठ मनाने के लिए एक चार पेज का पोस्टर तैयार किया, जिसको नाम दिया ओ शहीदो (O Martyrs) इस पोस्टर में उन्होंने साफ लिखा कि 10 मई 1857 को जिस क्रांति की नींव रखी गई थी, वो 10 मई 1908 को भी खत्म नहीं हुई है। आजादी मिलने तक ये क्रांति जारी रहेगी। ओ महान शहीदो! अपने पुत्रों के इस पवित्र संघर्ष में अपनी प्रेरणादायी उपस्थिति से हमारी सहायता करो। हमारे प्राणों में भी वहीं एकता का मंत्र फूंक दो जिससे तुमने देश को तब एकता के सूत्र में बांध दिया था’।

ये भी जान लीजिए कि जब सावरकर को 1910 में गिरफ्तार करके दो दो काले पानी की सजा सुनाई गई थी, तब यही वो पैम्फलेट पोस्टर था, जिसको तब कोर्ट में पढ़कर सुनाया गया था। लेकिन इस पोस्टर के जरिए सावरकर ने 1908 में ही आजादी की उस पहली लड़ाई को सिपाही विद्रोह के ढांचे से निकाल बाहर कर दिया था। जब सारे क्रांतिकारी रूसी, इटली और आयरलैंड की क्रांतियों की कहानियों वाली किताबें पढते थे, सावरकर को ये आवश्यकता बड़ी तीव्रता से महसूस हो रही थी कि हमें भारत में ही क्रांति की प्रेरणा ढूंढनी होगी।

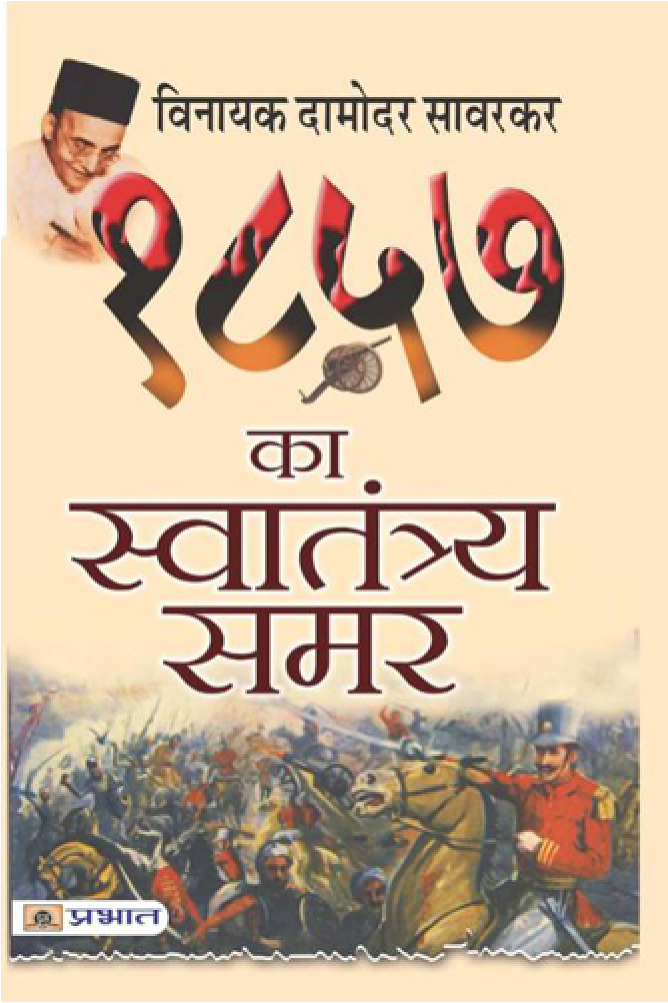

ये भी दिलचस्प बात है कि उस वक्त तक हमें ये भी नहीं पता था कि भारत में चंद्रगुप्त मौर्य जैसे महान सम्राट और चाणक्य जैसे महान राजनीतिज्ञ भी पैदा हुए हैं, दोनों का साहस अपने आप में एक बड़ी प्रेरणा था। अगले साल यानी 1909 में मैसूर की लाइब्रेरी में 'अर्थशास्त्र' की एक कॉपी रखी हुई मिली, तब जाकर मौर्य साम्राज्य और चाणक्य के राजों से परतें उठना शुरू हुई थीं। एक देश जिसकी महानता को उसके निवासियों के हृदयों से ही गायब कर दिया गया, वो अब चेतना को वापस पाने लगा था।

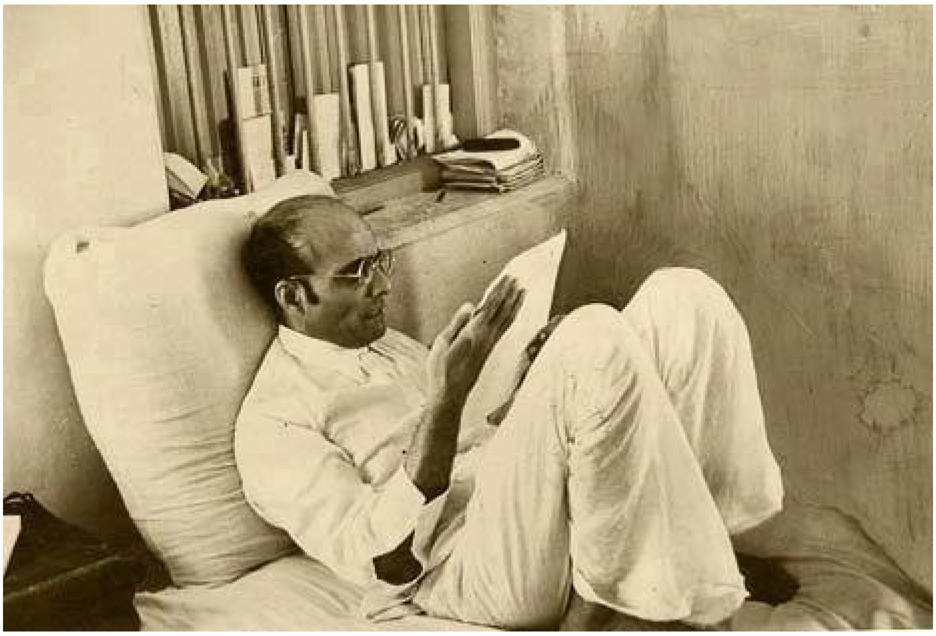

और चेतना की इस वापसी में सबसे ज्यादा मदद की वीर सावरकर की किताब ‘1857 स्वातंत्रय समर’ ने। 10 मई 1908 को ही लंदन के इंडिया हाउस में क्रांति की वर्षगांठ का शानदार जश्न मनाया गया, यूरोप और इंगलैंड के सैकड़ों भारतीय देशी वेशभूषा में माथे पर चंदन लगाकर इस समारोह में जुटे। 1857 पर किताब लिखने से पहले सावरकर ने उन्हें संक्षिप्त में वो सब बताया जो उन्हें अब तक पता चल चुका था। तभी 1857 क्रांति की प्रतीक चपाती यानी रोटी को भी सबको वहां बांटा गया। देशभक्ति गीत गाए गए और भारत माता को स्वतंत्र करवाने का संकल्प लिया गया।

अगले दिन इस समारोह की खबरें सभी ब्रिटिश अखबारों में थी, वो पैम्फेलेट जो अंदर बांटा गया था, वो भी छपा तो अंग्रेजी सरकार भौचक रह गई। इंडिया हाउस उनकी निगाहों में आ गया। सबको पता चल गया कि सावरकर 1857 पर कोई किताब लिख रहे हैं। अंग्रेजी गुप्तचर विभाग हरकत में आया और उस किताब के बारे में जानकारी करने में लग गए सारे गुप्तचर। महीनों तक सावरकर चुपचाप अपनी किताब को मराठी में पूरा करते रहे, जब पूरी हो गई गई तो पांडुलिपि उन्होंने सीक्रेट तरीके से भारत में अपने भाई बाबाराव सावरकर तक पहुंचवा दी।

अब शुरू होती है 1947 में खुले रुप से छपने से पहले इस पुस्तक की अनोखी 38 साल की यात्रा, एक देश से दूसरे देश, एक क्रांतिकारी से दूसरे क्रांतिकारी। कैसे कई देशों से मना करने के बाद भी, वापस लौटान के बावजूद वो पुस्तक छपी और गदर क्रांतिकारियों से लेकर भगत सिंह और सुभाष चंद्र बोस तक ने उसका एडीशन छपवाया ताकि साथी क्रातिकारियों और आजाद हिंद फौज के सिपाहियों को प्रेरणा दी जा सके।

भारत में अग्रेजी सरकार को जब तक ये खबर लग चुकी थी कि पुस्तक की पांडुलिपि मराठी में है, सो जाहिर है महाराष्ट्र में ही छपेगी। पूरे राज्य के मराठी छापेखानों पर एक साथ छापा मारा गया, लेकिन जहां ये पुस्तक छपने गई थी, उस छापेखाने का मालिक सावरकर के संगठन ‘अभिनव भारत’ से जुड़ा हुआ था। उसे अपने पुलिस अधिकारी मित्र से इस छापे की पहले ही सूचना मिल गई थी, सो फौरन इस पांडुलिपि को पेरिस भिजवा दिया गया।

पेरिस में लाला हरदयाल और भीखाजी कामा जैसे क्रांतिकारी सावरकर के मित्र थे, लेकिन उन्होंने उसे इस आस में जर्मनी भेज दिया कि जर्मनी में संस्कृत भाषा को जानने वाले ज्यादा हैं, अक्सर संस्कृत गंथों के अनुवाद वहां होते रहते हैं, तो मराठी भी हो सकता है। लेकिन वहां भी कोई मराठी कम्पोजिटर नहीं मिला। क्रांतिकारी निराश होने के लिए तैयार नहीं थे। तय किया गया कि मराठी से अंग्रेजी में ट्रांसलेशन किया जाए, और अलग अलग लोग उसके अलग अलग अध्यायों को मराठी से अंग्रजी में अनुवाद करने के काम में जुट गए।

इस काम में वीवीएस अय्यर को लगाया गया, उन्होंने लंदन में उन भारतीय युवाओं को राजी किया, जो उस वक्त आईसीएस और बैरिस्टर की तैयारी के लिए लंदन आए हुए थे। अनुवाद से अंगेजी पांडुलिपि तो तैयार हो गई, लेकिन इंगलैंड में छपवाने का मतलब था कि उसकी खबर अंग्रेजी सरकार को हो जाना। इधर जर्मनी के खिलाफ फ्रांस और इंगलैंड हाथ मिला चुके थे, इसलिए पेरिस में भी मुश्किल हो चला था। फ्रांस ने भी इस समझौते के बाद अपने जासूस पेरिस के भारतीय क्रांतिकारियों के पीछे लगा दिए थे।

अब एक नई रणनीति अपनाई गई, प्रचारित कर दिया कि ये पुस्तक पेरिस में छप रही है और इधर हॉलैंड यानी नीदरलैंड में एक छापेखाने को पुस्तक छापने के लिए तैयार कर लिया गया। फ्रांस और इंगलैंड के गुप्तचर नाकाम रहे और पुस्तक अंग्रेजी में छपकर आ भी गई। 6 नवंबर 1908 को न्यू स्कॉटलैंड यार्ड ने पुस्तक के छपने की खबर अंग्रेजी सरकार को दी, तब तक ये किताब ना जाने कितने देशों के भारतीय क्रांतिकारियों के ठिकानों पर पहुंच चुकी थी। लेकिन भारत नहीं पहुंची थी, अब उस वक्त के वायसराय लॉर्ड मिंटो को एक ही चिंता थी कि कैसे भी ये किताब भारत नहीं पहुंचनी चाहिए और इसके लिए पुलिस और गुप्तचरों को काम पर लगा दिया गया।

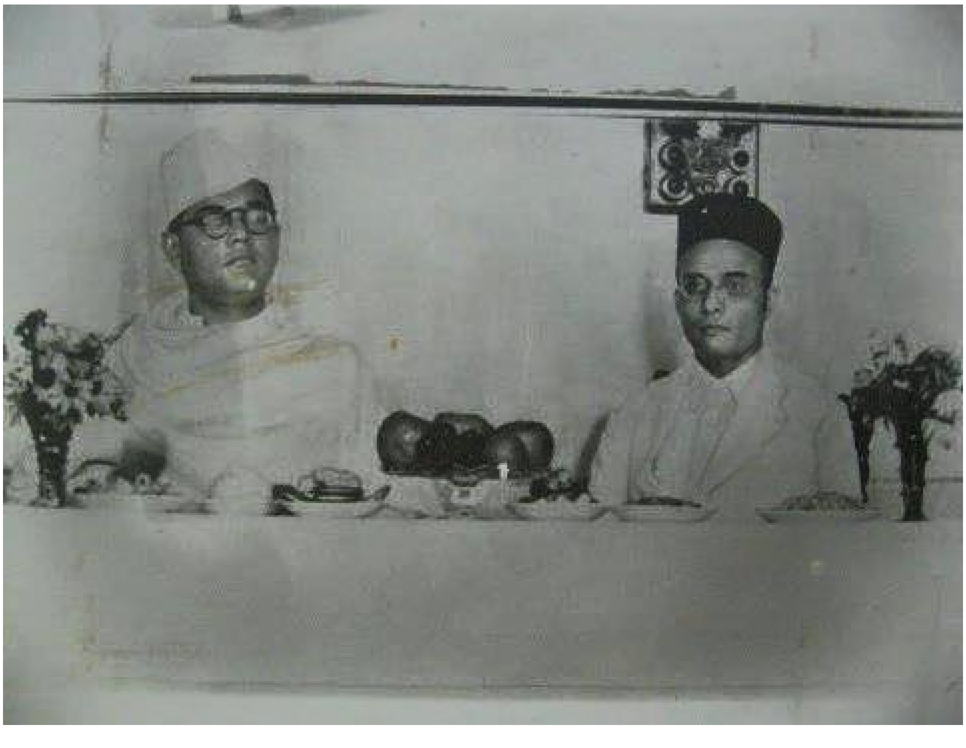

दिक्कत ये थी कि किताब के लेखक का ही नाम पता था, ये भी पता नहीं था कि किस भाषा में छपी है,

उसका टाइटल क्या है, कितनी बड़ी है, किस प्रकाशक से छपी है, तो कस्टम पर कैसे पकड़ते। ऐसे में कस्टम को एक गोलमोल सूचना जारी की गई कि एक किताब जो मराठी में लिखी गई है, भारतीय विद्रोही वीडी सावरकर ने लिखी है, शायद जर्मनी में छपी है। इसको लेकर पोस्ट ऑफिस एक्ट लगाया गया क्योंकि समुद्र कस्टम एक्ट लगाते तो विदेशों में भारतीय क्रांतिकारी सतर्क हो जाते। लेकिन बम्बई की सरकार को पता था कि समुद्र कस्टम एक्ट के बिना इसे रोक पाना मुमकिन नहीं है, सो उसने समुद्र कस्टम एक्ट लगाने की अपील की। दरअसल बम्बई की सरकार ये जानकर काफी घबरा चुकी थी कि ये पुस्तक मराठी में है, सोचिए एक किताब से घबरा रही थी सरकार।

उधर अंग्रेजी सरकार ये नहीं समझ पा रही थी कि ऐसी किसी पुस्तक की जानकारी इंगलैंड में कस्टम को दी जाए कि नहीं, लंदन से जहाज में लदने पर ही पकड़ लिया जाए तो ज्यादा बेहतर लेकिन वहां रोकने की सूचना जारी की गई, तो क्रांतिकारियों को भी पता लगना मुमकिन है, तब वो नया रास्ता ढूंढ लेंगे। सो बहुत दिनों तक दुविधा में रहे अग्रेज अधिकारी। नवंबर 1908 में किताब छपी थी और जुलाई 1909 में यानी 9 महीने बाद इंगलैंड के क्रिमिनल इंटेलीजेंस के डिप्टी डायरेक्टर एबी बर्नाड ने खुलासा किया कि ये किताब अंग्रेजी में छपी है और इसका टाइटिल 1857 की क्रांति का इतिहास या 1857 का इतिहास रखा गया है।

उसी रिपोर्ट में उसने बताया कि 24 जून के बाद अगली डाक से उसकी प्रतियां भारत के लिए निकलनी थी, यानी अब तक निकल भी चुकी होंगी। 23 जुलाई को फायनली उस पुस्तक पर प्रतिबंध का आदेश जारी कर दिया गया। ऐसे में सावरकर ने लंदन टाइम्स में एक लेख लिखा, " अंग्रेजी सरकार का आदेश बताता है कि ये स्पष्ट नहीं है कि बुक छपी है या नहीं, उसकी प्रति उनके पास नहीं है, उसकी पांडुलिपि उनके पास नहीं है, तो फिर उन्हें कैसे पता कि ये राजद्रोहत्मक सामग्री की पुस्तक है, अगर उनके पास कोई सुबूत है तो मेरे खिलाफ कोई राजद्रोह का केस क्यों नहीं चलाते ? आप बिना सुबूत के उस पुस्तक को प्रतिबंधित कैसे कर सकते हैं ?" ।वैसे आप जान लें कि उस पुस्तक पर लेखक के तौर पर सावरकार के नाम की जगह लिखा था, 'एक भारतीय देशभक्त'।

उसके बाद उस किताब के दुनियां भर के क्रांतिकारियों और कई भाषाओं में अनुवाद की कहानी काफी रोमांचक है, कैसे अन्य किताबों, कपड़ों में छुपाकर बडे बड़े दिग्गज उसे एक देश से दूसरे देश ले गए, जर्मन से लेकर फ्रेंच, मराठी से लेकर पंजाबी तक में अनुवाद करके हर देशभक्त तक इस किताब को पहुंचाया गया। हर एक को बताया गया कि 1857 में सिपाही विद्रोह नहीं बल्कि वो स्वतंत्रता का पहला संग्राम था। भगत सिंह भी सावरकर से नजरबंदी के दिनों में रत्नागिरी जाकर मिले और किताब का पंजाबी एडीशन छापा, बंगाली एडीशन की इजाजत नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज के सिपाहियों के लिए ली और सबसे दिलचस्प बात कि आम तौर पर बाद में हिंदू महासभा से जुड़ाव के चलते ज्यादातर मुस्लिम सावरकर को पसंद नहीं करते तो उनको भी ये किताब इसलिए पढ़नी चाहिए क्योंकि अशफाकउल्लाह खान के अलावा अगर बाकी मुस्लिम क्रांतिकारियों के नाम जानने हैं, तो ये पुस्तक काफी सहायक है।

साभार http://indianewsjaihind.com/ से